

## Chapter उन्नीस

### राजा ययाति को मुक्ति-लाभ

इस अध्याय में बताया गया है कि जब महाराज ययाति ने बकरे तथा बकरी की प्रतीकात्मक कहानी सुनाई तो उन्हें किस प्रकार मुक्ति प्राप्त हुई।

भौतिक संसार में अनेकानेक वर्षों तक संभोगादि करने के बाद राजा ययाति को अन्ततः ऐसे भौतिक सुख से वितृष्णा हो गई। जब वे भौतिक भोग से ऊब चुके तो उन्होंने बकरे-बकरी की एक कहानी बनाई जो उनके निजी जीवन पर आधारित थी और इसे अपनी प्रियतमा देवयानी को सुनाया। यह कहानी इस प्रकार है।

एक बार जब एक बकरा जंगल में चरने के लिए विविध प्रकार की सब्जियों की तलाश में घूम रहा था तो उसे दैववशात् एक कुँआ मिला जिसके भीतर उसने एक बकरी देखी। वह उस बकरी पर आसक्त हो गया; अतएव उसने किसी तरह से उसे कुँए से बाहर निकाला और इस तरह वे दोनों मिल गये। उसके बाद एक दिन जब बकरी ने उस बकरे को एक अन्य बकरी के साथ संभोग करते देखा तो वह क्रुद्ध हो उठी और उसने बकरे को त्याग दिया। वह अपने ब्राह्मण मालिक के पास लौट आई और उसने अपने पति के आचरण के विषय में उसे कह सुनाया। ब्राह्मण अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और उसने बकरे को शाप दे दिया कि वह संभोग-शक्ति से विहीन हो जाय। तत्पश्चात् बकरे ने ब्राह्मण से क्षमा माँगी तो उसे संभोग-शक्ति फिर से मिल गई। तब बकरा वर्षों तक बकरी के साथ संभोगरत रहा, किन्तु फिर भी वह अतृप्त रहा। यदि कोई कामी तथा लोभी हो तो विश्व का सारा सोना भी उसकी कामेच्छाओं को तृप्त नहीं कर सकता। ये इच्छाएँ अग्नि के समान हैं। यदि कोई प्रज्वलित अग्नि पर घी डाले तो इससे अग्नि बुझने की आशा नहीं की जा सकती। अग्नि बुझाने के लिए कोई दूसरी विधि अपनानी होगी। इसीलिए शास्त्रों का उपदेश है कि बुद्धि से मनुष्य भोगमय जीवन का परित्याग कर दे। जो लोग अल्पज्ञ हैं वे महान् प्रयास के बिना इन्द्रिय-भोग, और वह भी विषय-भोग, नहीं त्याग सकते क्योंकि सुन्दर स्त्री बड़े से बड़े विद्वान को भी मोहित कर लेती है। किन्तु राजा ययाति ने सांसारिक जीवन का परित्याग कर दिया और अपनी सम्पत्ति अपने पुत्रों में बाँट दी। सारे भौतिक भोगों का आकर्षण त्याग कर संन्यासी का जीवन ग्रहण करके वह भगवान् की सेवा में दत्तचित्त

रहने लगा। इस तरह उसे सिद्धि प्राप्त हो गई। बाद में जब उसकी प्रिय पत्नी देवयानी भ्रमपूर्ण जीवन से मुक्त हुई तो वह भी भगवान् की भक्ति में लग गई।

श्रीशुक उवाच

स इत्थमाचरन्कामान्स्त्रैणोऽपह्वमात्मनः ।

बुद्ध्वा प्रियायै निर्विण्णो गाथामेतामगायत ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—श्री शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सः—महाराज ययाति; इत्थम्—इस तरह से; आचरन्—आचरण करते हुए; कामान्—कामेच्छाओं को; स्त्रैणः—स्त्री से अत्यधिक लिप्त; अपह्वम्—प्रतिक्रिया; आत्मनः—अपने कल्याण के लिए; बुद्ध्वा—बुद्धि से समझते हुए; प्रियायै—अपनी प्रिया देवयानी को; निर्विण्णः—वितृष्णा से भरकर; गाथाम्—कहानी; एताम्—यह; अगायत—सुनायी।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे महाराज परीक्षित, ययाति स्त्री पर अत्यधिक अनुरक्त था। किन्तु कालक्रम से जब वह विषय-भोग तथा इसके बुरे प्रभावों से ऊब गया तो उसने यह जीवन-शैली त्याग दी और अपनी प्रिय पत्नी को निम्नलिखित कहानी सुनाई।

शृणु भार्गव्यमूं गाथां मद्धिधाचरितां भुवि ।

धीरा यस्यानुशोचन्ति वने ग्रामनिवासिनः ॥ २ ॥

शब्दार्थ

शृणु—सुनो; भार्गवि—हे शुक्याचार्य की पुत्री; अमूम—इस; गाथाम्—कहानी को; मत्-विधा—मेरे आचरण से मिलते-जुलते; आचरिताम्—आचरण के; भुवि—इस संसार में; धीराः—धीर व्यक्ति; यस्य—जिसका; अनुशोचन्ति—पछताते हैं; वने—जंगल में; ग्राम-निवासिनः—भौतिक भोग के प्रति अत्यधिक अनुरक्त।

हे मेरी प्रिय पत्नी एवं शुक्याचार्य की बेटी, इस संसार में बिल्कुल मेरी ही तरह का कोई था। तुम मेरे द्वारा कही जा रही उसके जीवन की कथा सुनो। ऐसे गृहस्थ के जीवन के विषय में सुनकर वे लोग सदैव पछताते हैं जिन्होंने गृहस्थ जीवन से वैराग्य ले लिया है।

तात्पर्य : जो लोग गाँव में रहते हैं वे ग्राम निवासी कहलाते हैं और जो जंगल में रहते हैं वे वनवासी या वानप्रस्थ कहलाते हैं। गृहस्थ जीवन से वैराग्य ग्रहण करने वाले वानप्रस्थ सामान्यतया अपने विगत पारिवारिक जीवन के विषय में पछतावा करते हैं क्योंकि उसके कारण वे कामेच्छाओं की पूर्ति में लगे रहे। प्रह्लाद महाराज ने कहा है कि मनुष्य को चाहिए कि जितनी जल्दी हो सके गृहस्थ जीवन से विरक्त हो ले। उन्होंने गृहस्थ जीवन को अन्धकूप कहा है ( *हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपम्* )। यदि कोई लगातार या स्थायी

रूप से अपने परिवार के साथ रहने पर बल देता है तो यह समझना चाहिए कि वह आत्मघात कर रहा है। इसीलिए वैदिक सभ्यता में संस्तुति की गई है कि मनुष्य को चाहिए कि पचास वर्ष समाप्त होने पर पारिवारिक जीवन से विरक्त हो ले और वन में चला जाय। जब वह वन में रहने का अभ्यस्त हो ले या वानप्रस्थ में पटु हो जाय तो वह संन्यास ग्रहण कर ले। *वनं गतो यद्धरिमाश्रयेत। संन्यास* का अर्थ है भगवान् की सेवा में अनन्य तल्लीनता स्वीकार करना। इसीलिए वैदिक सभ्यता में जीवन की चार अवस्थाओं की संस्तुति की गई है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास। मनुष्य को गृहस्थ जीवन में ही बने रहने एवं दो उच्चतर अवस्थाओं—वानप्रस्थ तथा संन्यास तक न उठ पाने के लिए लज्जित होना चाहिए।

बस्त एको वने कश्चिद्विचिन्वन्प्रियमात्मनः ।

ददर्श कूपे पतितां स्वकर्मवशगामजाम् ॥ ३ ॥

#### शब्दार्थ

बस्तः—बकरा; एकः—एक; वने—वन में; कश्चित्—किसी; विचिन्वन्—भोजन की तलाश करता; प्रियम्—प्रिय; आत्मनः—अपने लिए; ददर्श—संयोगवश देखा; कूपे—कुएँ के भीतर; पतिताम्—गिरी हुई; स्व-कर्म-वश-गाम्—अपने कर्मों के फल के प्रभाव से; अजाम्—बकरी को।

एक बकरा अपनी इन्द्रियों को तुष्ट करने के लिए चरते हुए किसी जंगल में घूमते-घूमते अचानक एक कुएँ के पास आया जिसके भीतर उसने एक बकरी को निस्सहाय खड़ी देखा जो अपने सकाम कर्मों के प्रभाव से कुएँ में गिर गई थी।

**तात्पर्य :** यहाँ पर महाराज ययाति अपनी तुलना बकरे से और देवयानी की तुलना एक बकरी से करते हैं तथा पुरुष और स्त्री के स्वभाव का वर्णन करते हैं। मनुष्य बकरे की तरह इधर उधर भटकता हुआ इन्द्रियतृप्ति की खोज करता है और स्त्री, पुरुष या पति के आश्रय के बिना, उस बकरी के समान है जो कुएँ में गिर गई है। पुरुष की देखभाल के बिना स्त्री कभी भी सुखी नहीं रह सकती। निस्सन्देह, वह कुएँ के भीतर गिरी हुई बकरी के समान है जो जीवन-संघर्ष कर रही है। अतएव स्त्री को चाहिए कि वह अपने पिता का संरक्षण ग्रहण करे जैसा कि देवयानी ने शुक्राचार्य की देखरेख में रहते हुए किया था। तब पिता को चाहिए कि अपनी पुत्री का दान उपयुक्त व्यक्ति को कर दे या वह उपयुक्त व्यक्ति स्त्री को पति की निगरानी में रख दे। देवयानी के जीवन से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है। जब राजा ययाति ने देवयानी को कुएँ से निकाला था तो उसे बड़े आराम का अनुभव हुआ था और उसने ययाति से उसे अपनी पत्नी बनाने की

प्रार्थना की थी, किन्तु जब महाराज ययाति ने देवयानी को स्वीकार कर लिया तो वह इतना लिप्त रहने लगा कि वह न केवल उसी से संभोग करता अपितु शर्मिष्ठा जैसी अन्य स्त्रियों से भी करने लगा। तो भी वह असंतुष्ट रहा। अतएव मनुष्य को चाहिए कि ययाति जैसे गृहस्थ जीवन से जबरन विरक्त हो जाय। जब मनुष्य को यह पूरा पूरा विश्वास हो जाय कि सांसारिक गृहस्थ जीवन अधम है तो उसे ऐसा जीवन पूर्णतया त्याग कर संन्यास ग्रहण कर लेना चाहिए और भगवान् की सेवा में पूरी तरह लग जाना चाहिए। तभी मनुष्य का जीवन सफल होगा।

तस्या उद्धरणोपायं बस्तः कामी विचिन्तयन् ।  
व्यधत्त तीर्थमुद्धृत्य विषाणाग्रेण रोधसी ॥ ४ ॥

#### शब्दार्थ

तस्याः— बकरी का; उद्धरण-उपायम्—( कुएँ से ) उद्धार का उपाय; बस्तः— बकरे ने; कामी— विषयी; विचिन्तयन्— योजना बनाते हुए; व्यधत्त— सम्पन्न किया; तीर्थम्— बाहर निकालने का उपाय; उद्धृत्य— पृथ्वी खोदकर; विषाण-अग्रेण— पैने सींगों से; रोधसी— कुएँ के किनारे।

बकरी को कुएँ से बाहर निकालने की योजना बनाकर, विषयी बकरे ने अपने तीखे सींगों से कुएँ के किनारे की मिट्टी खोद डाली जिससे वह बकरी कुएँ से बाहर सरलता से निकल सकी।

तात्पर्य : स्त्री के प्रति आकर्षण ही इस संसार में सुखपूर्वक रहने के लिए आर्थिक विकास, आवास तथा अन्य वस्तुओं के प्रोत्साहन का कारण है। बकरी को बाहर निकालने के लिए मिट्टी खोदना अत्यन्त श्रमसाध्य कार्य था, किन्तु बकरी प्राप्त करने के पहले बकरे को यह श्रम करना पड़ा। *अहो गृहक्षेत्रसुताप्त वित्तैर्जनस्य मोहोऽयम् अहं ममेति।* नर तथा नारी के संयोग से अच्छा मकान, अच्छा वेतन, सन्तान तथा मित्र प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहन मिलता है। इस तरह मनुष्य इस भौतिक जगत में फँस जाता है।

सोत्तीर्य कूपात्सुश्रोणी तमेव चकमे किल ।  
तथा वृतं समुद्वीक्ष्य बह्व्योऽजाः कान्तकामिनीः ।  
पीवानं श्मश्रुलं प्रेष्ठं मीद्वंसां याभकोविदम् ॥ ५ ॥  
स एकोऽजवृषस्तासां बह्वीनां रतिवर्धनः ।  
रेमे कामग्रहग्रस्त आत्मानं नावबुध्यत ॥ ६ ॥

#### शब्दार्थ

सा— वह बकरी; उत्तीर्य— बाहर निकलकर; कूपात्— कुएँ से; सु-श्रोणी— अच्छे पुट्टों वाली; तम्— बकरे को; एव— निस्सन्देह; चकमे— पति रूप में पाना चाहा; किल— निस्सन्देह; तथा— उसके द्वारा; वृतम्— स्वीकृत; समुद्वीक्ष्य— देखकर; बह्व्यः— अन्य

अनेक; अजा:—बकरियाँ; कान्त-कामिनी:—बकरे को अपना पति बनाने की इच्छुक; पीवानम्—अत्यन्त बलिष्ठ; श्मश्रुलम्—अच्छी मूछों तथा दाढ़ी वाले; प्रेष्ठम्—उच्चकोटि का; मीढ्वांसम्—वीर्यस्खलित करने में पटु; याभ-कोविदम्—मैथुन-क्रिया में पटु; स:—वह बकरा; एक:—अकेला; अज-वृष:—बकरियों का नायक; तासाम्—सारी बकरियों का; बह्वीनाम्—अनेक; रति-वर्धन:—कामेच्छा को बढ़ाने में समर्थ; रेमे—भोग किया; काम-ग्रह-ग्रस्त:—कामेच्छा के भूत से सताया हुआ; आत्मानम्—अपने आपको; न—नहीं; अवबुध्यत—समझ सका।

जब सुन्दर पुट्टों वाली बकरी कुएँ से बाहर आ गई और उसने अत्यन्त सुन्दर बकरे को देखा तो उसने उसे अपना पति बनाना चाहा। जब उसने ऐसा कर लिया तो अन्य अनेक बकरियों ने भी उस बकरे को अपना पति बनाना चाहा क्योंकि उसका शारीरिक गठन अत्यन्त सुन्दर था, उसकी मूँछ तथा दाढ़ी सुन्दर थी और वह वीर्यस्खलन करने तथा संभोग कला में पटु था। अतएव, जिस तरह भूत से सताया गया मनुष्य पागलपन दिखलाता है उसी तरह वह श्रेष्ठ बकरा अनेक बकरियों से आकृष्ट होकर तथा अश्लील कार्यों में लिप्त रहने के कारण आत्म-साक्षात्कार के अपने असली कार्य को भूल गया।

तात्पर्य : भौतिकतावादी सचमुच ही संभोग के प्रति अत्यधिक आकृष्ट रहते हैं। *यन्मैथुनादि गृहमेधि सुखं हि तुच्छम्।* यद्यपि मनुष्य जी भरकर विषयी जीवन बिताने के लिए गृहस्थ बनता है लेकिन वह कभी भी तुष्ट नहीं होता। ऐसा विषयी भौतिकतावादी व्यक्ति बकरे के समान होता है क्योंकि यह कहा जाता है कि वध के लिए ले जाये जाने वाले बकरे को यदि संभोग करने का अवसर मिल जाय तो मरने के पूर्व भी वह संभोग कर लेता है, किन्तु मनुष्य-जीवन तो आत्म-साक्षात्कार के निमित्त है—

*तपो दिव्यं पुत्रका येन सत्त्वं*

*शुद्धयेद् यस्माद् ब्रह्मसौख्यं त्वनन्तम्।*

मनुष्य-जीवन आत्म-साक्षात्कार के लिए है, उस आत्मा के लिए जो शरीर के भीतर है ( *देहिनोऽसिन् यथा देहे* )। भौतिकतावादी मूढ़ यह नहीं जानता कि वह शरीर नहीं, अपितु शरीर के भीतर का आत्मा है। फिर भी मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी वास्तविक स्थिति को समझे और ज्ञान का अनुशीलन करे जिससे वह इस शारीरिक बन्धन से मुक्त हो सके। जिस प्रकार कोई अभागा मनुष्य भूतप्रेत से सताये जाने पर पागल की तरह कार्य करता है उसी तरह भौतिकतावादी मनुष्य काम रूपी भूतप्रेत से सताये जाने पर अपने असली कार्य को भूल जाता है जिससे वह देहात्मबुद्धि में तथाकथित सुख को भोग सके।

तमेव प्रेष्ठतमया रममाणमजान्यया ।  
विलोक्य कूपसंविग्ना नामृष्यद्वस्तकर्म तत् ॥ ७ ॥

शब्दार्थ

तम्—बकरे को; एव—निस्सन्देह; प्रेष्ठतमया—प्यारी, प्रियतमा द्वारा; रममाणम्—रमण की जाती हुई; अजा—बकरी; अन्यया—दूसरी बकरी से; विलोक्य—देखकर; कूप-संविग्ना—कुएँ में गिरी बकरी; न—नहीं; अमृष्यत्—सहन कर सकी; बस्त-कर्म—बकरे के कार्य को; तत्—वह ( मैथुन ही बकरे का व्यापार माना गया है )।

जब उस बकरी ने, जो कुएँ में गिरी थी, देखा कि उसका प्रियतम बकरा किसी दूसरी बकरी से संभोग कर रहा है तो वह बकरे के इस कार्य को सहन नहीं कर पाई।

तं दुर्हृदं सुहृद्रूपं कामिनं क्षणसौहृदम् ।  
इन्द्रियाराममुत्सृज्य स्वामिनं दुःखिता ययौ ॥ ८ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस ( बकरे ) को; दुर्हृदम्—अत्यन्त क्रूर हृदय; सुहृत्-रूपम्—मित्र बनने वाले; कामिनम्—अत्यन्त कामी; क्षण-सौहृदम्—क्षण भर की मित्रता; इन्द्रिय-आरामम्—केवल इन्द्रियतृप्ति या विलासिता में रुचि रखने वाला; उत्सृज्य—छोड़कर; स्वामिनम्—अपने इस पति को या अपने पूर्व पालक को; दुःखिता—अत्यन्त दुखी; ययौ—वह चली गई।

अन्य बकरी के साथ अपने पति के इस आचरण से दुखी उस बकरी ने सोचा कि यह बकरा उसका वास्तविक मित्र नहीं अपितु कठोरहृदय वाला तथा कुछ क्षण के लिए ही मित्र है। अतएव अपने पति के कामी होने के कारण उस बकरी ने उसका साथ छोड़ दिया और अपने पहले वाले स्वामी के पास लौट गई।

तात्पर्य : स्वामिनम् शब्द महत्त्वपूर्ण है । स्वामी का अर्थ है रखवाली करने वाला अथवा पति । देवयानी का पालन विवाह के पूर्व शुक्राचार्य द्वारा हो रहा था और विवाह के बाद ययाति द्वारा, किन्तु यहाँ पर स्वामिनम् शब्द बताता है कि देवयानी ने अपने पति ययाति का संरक्षण त्याग दिया और वह अपने पहले वाले रक्षक शुक्राचार्य के यहाँ लौट गई। वैदिक सभ्यता की संस्तुति है कि स्त्री पुरुष के संरक्षण में रहे। बचपन में उसकी रक्षा पिता द्वारा की जानी चाहिए, युवावस्था में उसके पति द्वारा और बुढ़ापे में वयस्क पुत्र द्वारा किसी भी अवस्था में स्त्री को स्वतंत्रता नहीं दी जानी चाहिए।

सोऽपि चानुगतः स्त्रैणः कृपणस्तां प्रसादितुम् ।  
कुर्वन्निडविडाकारं नाशक्नोत्यथि सन्धितुम् ॥ ९ ॥

शब्दार्थ

सः—वह बकरा; अपि—भी; च—भी; अनुगतः—बकरी का पीछा करता; स्त्रैणः—स्त्री-प्रेमी; कृपणः—अत्यन्त गरीब; ताम्—उसको; प्रसादितुम्—प्रसन्न करने के लिए; कुर्वन्—करते हुए; इडविडा-कारम्—बकरी की भाषा में बोलते हुए; न—नहीं; अशक्नोत्—समर्थ था; पथि—मार्ग में; सन्धितुम्—प्रसन्न करने के लिए।

वह बकरा अत्यन्त दुखी होकर अपनी पत्नी का चाटुकार होने के कारण मार्ग में उसके पीछे-पीछे हो लिया और उसने उसकी भरसक चाटुकारी करनी चाही, किन्तु वह उसे मना नहीं पाया।

तस्य तत्र द्विजः कश्चिदजास्वाम्यच्छिनद्रुषा ।

लम्बन्तं वृषणं भूयः सन्दधेऽर्थाय योगवित् ॥ १० ॥

#### शब्दार्थ

तस्य—बकरे का; तत्र—तत्पश्चात्; द्विजः—ब्राह्मण; कश्चित्—कोई; अजा-स्वामी—दूसरी बकरी के मालिक ने; अच्छिनत्—बधिया कर दिया; रुषा—क्रोध में आकर; लम्बन्तम्—लम्बे; वृषणम्—फोते, अण्डकोष को; भूयः—फिर; सन्दधे—जोड़ दिया; अर्थाय—अपने हित में; योग-वित्—योगशक्ति में पटु।

बकरी उस ब्राह्मण के घर गई जो एक दूसरी बकरी का मालिक था और उस ब्राह्मण ने गुस्से में आकर बकरे के लम्बे लटकते अण्डकोष काट लिये। किन्तु बकरे द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उस ब्राह्मण ने योगशक्ति से उन्हें फिर से जोड़ दिया।

तात्पर्य : यहाँ पर शुक्राचार्य को आलंकारिक रूप में दूसरी बकरी का पति बताया गया है। इससे सूचित होता है कि किसी भी समाज में चाहे वह मानव समाज से उच्चतर हो या निम्नतर, बकरी बकरे जैसा ही सम्बन्ध होता है क्योंकि पुरुष और स्त्री का भौतिक सम्बन्ध संभोग का है। *यन्मैथुनादि गृहमेधिसुखं हि तुच्छम्*। शुक्राचार्य पारिवारिक मामलों के आचार्य थे जिसमें बकरे के वीर्य को बकरी में स्थानान्तरित करना होता है। *कश्चिद् अजास्वामी* शब्द निश्चित रूप से बताते हैं कि शुक्राचार्य किसी भी तरह ययाति से श्रेष्ठ न थे क्योंकि दोनों ही शुक्र या वीर्य द्वारा उत्पन्न पारिवारिक मामलों में रुचि रखते थे। शुक्राचार्य ने सर्वप्रथम ययाति को शाप दिया था कि वह वृद्ध हो जाय जिससे वह संभोग न कर सके, किन्तु जब उन्होंने देखा कि इससे उन्हीं की पुत्री को दण्ड मिलेगा तो उन्होंने अपनी योगशक्ति से ययाति के पुंसत्व को फिर से स्थापित कर दिया। चूँकि उन्होंने अपनी योगशक्ति का प्रयोग पारिवारिक मामलों में किया था, भगवान् की अनुभूति प्राप्त करने के लिए नहीं, अतएव यह योग के जादू का अभ्यास बकरा-बकरी के संभोग के समान था। योगशक्ति का समुचित प्रयोग भगवान् के साक्षात्कार करने में होना चाहिए जैसा कि साक्षात् भगवान् ने *भगवद्गीता* (६.४७) में संस्तुति की है—

योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना ।

श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥

“समस्त योगियों में से जो योगी श्रद्धापूर्वक मुझमें विश्वास करता है और दिव्य प्रेमाभक्ति से मेरी पूजा करता है वह योग में मुझसे भलीभाँति युक्त रहता है और सबों में श्रेष्ठ है।”

सम्बद्धवृषणः सोऽपि ह्यजया कूपलब्धया ।

कालं बहुतिथं भद्रे कामैर्नाद्यापि तुष्यति ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

सम्बद्ध-वृषणः—जिसके अण्डकोषों को जोड़ दिया गया हो; सः—वह; अपि—भी; हि—निस्सन्देह; अजया—बकरी के साथ; कूप-लब्धया—कुएँ से मिली; कालम्—समय के लिए; बहु-तिथम्—दीर्घकालीन; भद्रे—हे प्रिय पत्नी; कामैः—कामेच्छाओं सहित; न—नहीं; अद्य अपि—आज तक; तुष्यति—संतुष्ट होता है।

हे प्रिये, जब बकरे के अण्डकोष जुड़ गये तो उसने कुएँ से मिली बकरी के साथ सम्भोग किया और यद्यपि वह अनेकानेक वर्षों तक भोग करता रहा, किन्तु आज भी वह पूरी तरह सन्तुष्ट नहीं हो पाया है।

तात्पर्य : जब कोई अपनी पत्नी के स्नेह में आबद्ध होता है तो वह संभोग-वासनाओं से लिप्त रहता है जिन्हें जीत पाना अत्यन्त कठिन है। अतएव वैदिक सभ्यता के अनुसार मनुष्य को चाहिए कि स्वेच्छा से अपने तथाकथित घर को छोड़कर जंगल चला जाय। पञ्चाशोर्ध्व वनं व्रजेत्। मनुष्य जीवन ऐसी ही तपस्या के लिए है। घर पर संभोग के जीवन को स्वेच्छा से त्याग कर और जंगल जाकर भक्तों की संगति में आध्यात्मिक कार्यों में लगकर मनुष्य मानव जीवन के असली उद्देश्य को प्राप्त करता है।

तथाहं कृपणः सुभ्रु भवत्याः प्रेमयन्त्रितः ।

आत्मानं नाभिजानामि मोहितस्तव मायया ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

तथा—बकरे की तरह; अहम्—मैं; कृपणः—कंजूस, जिसे जीवन के महत्त्व का कोई ज्ञान नहीं है; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौहों वाली; भवत्याः—तुम्हारे साथ; प्रेम-यन्त्रितः—मानों प्रेम में बँधा हूँ जो कि वास्तव में विषयवासना है; आत्मानम्—आत्मसाक्षात्कार ( जो मैं हूँ और जो मेरा धर्म है ); न अभिजानामि—अभी तक समझ नहीं पाया; मोहितः—मोहित होकर; तव—तुम्हारे; मायया—आकर्षक भौतिक स्वरूप के द्वारा।

हे सुन्दर भौहों वाली प्रिये, मैं उसी बकरे के सदृश हूँ क्योंकि मैं इतना मन्दबुद्धि हूँ कि मैं तुम्हारे सौन्दर्य से मोहित होकर आत्म-साक्षात्कार के असली कार्य को भूल गया हूँ।



**तात्पर्य :** यदि कोई अपनी पत्नी के तथाकथित सौन्दर्य में फँसा रहता है तो उसका गृहस्थ-जीवन अन्धकूप के तुल्य है। *हित्वात्मपातं गृहमन्धकूपम्*। ऐसे अन्धकूप में रहना निश्चित रूप से आत्मघात है। यदि कोई दयनीय भौतिक जीवन से छुटकारा चाहता है तो उसे स्वेच्छापूर्वक अपनी पत्नी के साथ अपने विषय-भोगों को त्यागना होगा अन्यथा आत्म-साक्षात्कार का प्रश्न ही नहीं उठता। जब तक कोई आध्यात्मिक चेतना में बहुत आगे न बढ़ा-चढ़ा हो तब तक गृहस्थ जीवन अन्धकूप के सिवा कुछ भी नहीं है जिसमें उसे आत्मघात करना होता है। इसीलिए महाराज प्रह्लाद ने संस्तुति की है कि यथासमय, कम से कम जब मनुष्य पचास वर्ष का हो जाय तो उसे घरबार छोड़कर वन में चले जाना चाहिए। *वनं गतो यद्भरिम् आश्रयेत्*। वहाँ उसे हरि के चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

यत्पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।

न दुह्यन्ति मनःप्रीतिं पुंसः कामहतस्य ते ॥ १३ ॥

**शब्दार्थ**

यत्—जो भी; पृथिव्याम्—इस संसार के भीतर; व्रीहि—अन्न, धान; यवम्—जौ; हिरण्यम्—सोना; पशवः—पशु; स्त्रियः—स्त्रियाँ, पत्नियाँ; न दुह्यन्ति—नहीं देती हैं; मनः—प्रीतिम्—मन की तुष्टि; पुंसः—पुरुष को; काम-हतस्य—विषयवासनाओं के शिकार होने के कारण; ते—वे।

कामी पुरुष का मन कभी तुष्ट नहीं होता भले ही उसे इस संसार की हर वस्तु प्रचुर मात्रा में उपलब्ध क्यों न हो, जैसेकि धान, जौ, अन्य अनाज, सोना, पशु तथा स्त्रियाँ इत्यादि। उसे किसी वस्तु से संतोष नहीं होता।

**तात्पर्य :** भौतिकतावादी का लक्ष्य अपनी आर्थिक दशा को सुधारना है, किन्तु इस आर्थिक विकास का कोई अन्त नहीं है क्योंकि यदि मनुष्य अपनी कामेच्छाओं को वश में नहीं करता तो वह कभी भी सन्तुष्ट नहीं होगा, भले ही उसे विश्व भर की सम्पत्ति क्यों न मिल जाये। इस युग में हमें पर्याप्त भौतिक विकास दिखता है तो भी लोग अधिकाधिक भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए संघर्षरत हैं। *मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति*। यद्यपि प्रत्येक जीव परम पुरुष का अंश है, किन्तु कामेच्छाओं के कारण वह अपनी तथाकथित आर्थिक दशा को सुधारने के नाम पर निरन्तर संघर्षशील रहता है। मनस्तुष्टि प्राप्त करने के लिए कामेच्छाओं के मनो-रोग को त्यागना होगा। यह तभी हो सकता है जब कोई कृष्णभावनाभावित हो।

*भक्तिं परां भगवति प्रतिलभ्य कामं*

हृद्रोगमाश्रपहिनोत्यचिरेण धीरः

( भागवत १०.३३.३९ )

कृष्णभावनाभावित होने पर मनोरोग जाता रहता है अन्यथा कामेच्छाओं का यह रोग चलता रहेगा और मनुष्य को कभी भी मनःशान्ति प्राप्त नहीं हो सकेगी ।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शांयति ।  
हविषा कृष्णवर्त्मैव भूय एवाभिवर्धते ॥ १४ ॥

#### शब्दार्थ

न—नहीं; जातु—किसी भी समय; कामः—कामेच्छा; कामानाम्—कामी पुरुषों की; उपभोगेन—कामेच्छाओं के भोग द्वारा; शांयति—शान्त की जा सकती है; हविषा—घी द्वारा; कृष्ण-वर्त्मा—अग्नि; इव—सदृश; भूयः—बार बार; एव—निस्सन्देह; अभिवर्धते—अधिकाधिक बढ़ती है ।

जिस तरह अग्नि में घी डालने से अग्नि शान्त नहीं होती अपितु अधिकाधिक बढ़ती जाती है उसी प्रकार निरन्तर भोग द्वारा कामेच्छाओं को रोकने का प्रयास कभी भी सफल नहीं हो सकता । ( तथ्य तो यह है कि मनुष्य को स्वेच्छा से भौतिक इच्छाएँ समाप्त करनी चाहिए । )

तात्पर्य : इन्द्रियों की तृप्ति के लिए मनुष्य के पास प्रचुर धन तथा साधन प्राप्त होने पर भी वह कभी तृष्ट नहीं हो पाता क्योंकि भोग द्वारा कामेच्छाओं को रोक पाने में सफलता नहीं मिल सकती । यहाँ पर दिया गया दृष्टान्त अत्यन्त उपयुक्त है । कोई व्यक्ति घी डालकर प्रज्वलित अग्नि को बुझा नहीं सकता ।

यदा न कुरुते भावं सर्वभूतेष्वमङ्गलम् ।  
समदृष्टेस्तदा पुंसः सर्वाः सुखमया दिशः ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

यदा—जब; न—नहीं; कुरुते—करता है; भावम्—अनुरक्ति या द्वेष से भिन्न मनोवृत्ति; सर्व-भूतेषु—सारे जीवों पर; अमङ्गलम्—अशुभ; सम-दृष्टेः—समदृष्टि होने से; तदा—उस समय, तब; पुंसः—पुरुष का; सर्वाः—सारी; सुख-मयाः—सुखी अवस्था में; दिशः—दिशाएँ ।

जब मनुष्य द्वेष-रहित होता है और किसी का बुरा नहीं चाहता तो वह समदर्शी होता है । ऐसे व्यक्ति के लिए सारी दिशाएँ सुखमय प्रतीत होती हैं ।

तात्पर्य : प्रबोधानन्द सरस्वती ने कहा है—*विश्वं पूर्णसुखायते*—जब मनुष्य भगवान् चैतन्य के अनुग्रह से कृष्णभावनाभावित बनता है तो उसे सारा संसार सुखी दिखता है और उसे किसी वस्तु की लालसा नहीं

रह जाती। ब्रह्म-भूत अवस्था में या दिव्य-साक्षात्कार के पद पर न कोई संताप रहता है न कोई भौतिक आकांक्षा। ( न शोचति न कांक्षति ) जब तक मनुष्य इस जगत में रहता है तब तक कर्म-फल चलते रहते हैं, किन्तु जब मनुष्य कर्म तथा फल से अप्रभावित हो जाता है तो वह भौतिक इच्छाओं का शिकार बनने के खतरे से बच जाता है। इस श्लोक में उन लोगों के लक्षणों का वर्णन हुआ है जो कामेच्छाओं से ऊब गए हैं। जैसा कि श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने बतलाया है जब मनुष्य अपने शत्रु से भी द्वेष नहीं रखता, जब वह किसी से सम्मान नहीं चाहता, उल्टे वह अपने शत्रु तक का भला चाहता है तो वह परमहंस कहा जाता है अर्थात् जिसने अपनी कामवासनाओं को पूरी तरह दमित कर लिया है।

या दुस्त्यजा दुर्मतिभिर्जीर्यतो या न जीर्यते ।

तां तृष्णां दुःखनिवहां शर्मकामो द्रुतं त्यजेत् ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

या—जो; दुस्त्यजा—जिसको छोड़ पाना अत्यन्त कठिन है; दुर्मतिभिः—भौतिक भोगों में अत्यधिक आसक्त व्यक्तियों द्वारा; जीर्यतः—वृद्धावस्था के कारण अत्यन्त अशक्तों द्वारा भी; या—जो; न—नहीं; जीर्यते—नष्ट होती है; ताम्—ऐसी; तृष्णाम्—इच्छा को; दुःख-निवहाम्—सारे दुखों का मूल कारण; शर्म-कामः—अपने सुख का इच्छुक व्यक्ति; द्रुतम्—शीघ्र ही; त्यजेत्—छोड़ दे।

जो लोग भौतिक भोग में अत्यधिक लिप्त रहते हैं उनके लिए इन्द्रियतृप्ति को त्याग पाना अत्यन्त कठिन है। यहाँ तक कि वृद्धावस्था के कारण अशक्त व्यक्ति भी इन्द्रियतृप्ति की ऐसी इच्छाओं को नहीं त्याग पाता। अतएव जो सचमुच सुख चाहता है उसे ऐसी अतृप्त इच्छाओं को त्याग देना चाहिए क्योंकि ये सारे कष्टों की जड़ हैं।

तात्पर्य : हमने पश्चिमी देशों में वास्तव में देखा है कि जो लोग अस्सी वर्ष के हो चुके हैं वे भी नाइटक्लबों में जाते हैं और शराब पीने तथा स्त्रियों की संगति करने में काफी धन व्यय करते हैं। यद्यपि ऐसे लोग किसी भी वस्तु का भोग करने के लिए पर्याप्त वृद्ध रहते हैं, किन्तु उनकी इच्छाएँ (तृष्णाएँ) नहीं मरती हैं। समय शरीर को भी जर्जर बना देता है जो ऐन्द्रिय तृप्ति का साधन है, किन्तु वृद्ध तथा अशक्त होने पर भी मनुष्य की इच्छाएँ इतनी प्रबल होती हैं कि वह अपनी इन्द्रियों की इच्छापूर्ति के लिए इधर-उधर मारा-मारा फिरने पर विवश हो जाता है। अतएव भक्तियोग के अभ्यास से मनुष्य को अपनी कामेच्छाएँ त्याग देनी चाहिए। जैसा कि श्री यामुनाचार्य ने बतलाया है—

यदवधि मम चेतः कृष्णपादारविन्दे

नवनवरसधामन्युद्यतं रन्तुमासीत् ।

तदवधि बत नारीसंगमे स्मर्यमाने

भवति मुखविकारः सुष्ठुनिष्ठीवनं च ॥

जब मनुष्य कृष्णभावनाभावित बन जाता है तो उसे कृष्ण के लिए कार्य करने से अधिकाधिक सुख मिलता है। ऐसा व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति पर, विशेष रूप से विषय-भोग पर, थूकता है। अनुभवी प्रगत भक्त की रुचि विषयी जीवन में नहीं रहती। कृष्णभावनामृत में प्रगति के द्वारा ही संभोग की प्रबल इच्छा को दमित किया जा सकता है।

मात्रा स्वस्त्रा दुहित्रा वा नाविविक्तासनो भवेत् ।

बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥ १७ ॥

#### शब्दार्थ

मात्रा—माता के साथ; स्वस्त्रा—बहन के साथ; दुहित्रा—पुत्री के साथ; वा—अथवा; न—नहीं; अविविक्त-आसनः—एक ही आसन पर सटकर बैठे; भवेत्—हो; बलवान्—अत्यन्त प्रबल; इन्द्रिय-ग्रामः—इन्द्रियसमूह; विद्वांसम्—अत्यन्त विद्वान व्यक्ति को; अपि—भी; कर्षति—उत्तेजित करता है।

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी माता, बहन या पुत्री के साथ एक ही आसन पर न बैठे क्योंकि इन्द्रियाँ इतनी प्रबल होती हैं कि बड़े से बड़ा विद्वान भी यौन द्वारा आकृष्ट हो सकता है।

तात्पर्य : स्त्रियों के साथ बर्ताव करने का शिष्टाचार सीख लेने से कोई यौन-आकर्षण से मुक्त नहीं हो सकता। जैसा कि यहाँ पर विशेष उल्लेख हुआ है, ऐसा आकर्षण अपनी माता, बहन या पुत्री से भी हो सकता है। सामान्यतया कोई अपनी माता, बहन या पुत्री के प्रति विषयभोग की दृष्टि से आकृष्ट नहीं होता, किन्तु यदि कोई इनके सन्निकट बैठा है तो वह आकृष्ट हो सकता है। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है। ऐसा कहा जा सकता है कि यदि कोई सभ्य जीवन में बढ़ा-चढ़ा नहीं है तो वह आकृष्ट हो सकता है, किन्तु जैसा कि यहाँ विशेष रूप से उल्लेख हुआ है *विद्वांसमपि कर्षति*—विद्वान भी, चाहे वह भौतिक या आध्यात्मिक दृष्टि से कितना ही बढ़ा-चढ़ा क्यों न हो, विषयवासनाओं द्वारा आकृष्ट हो सकता है। आकर्षण की वस्तु उसकी माता, बहन या पुत्री तक हो सकती है। अतएव स्त्रियों के साथ व्यवहार करते समय मनुष्य को अत्यधिक सावधान रहना चाहिए। चैतन्य महाप्रभु ऐसे व्यवहार में, विशेष रूप से संन्यास ग्रहण करने के बाद, अत्यन्त कठोर थे। उनके पास कोई भी स्त्री प्रणाम करने के लिए नहीं जा पाती थी। यहाँ पर भी यह चेतावनी दी गई

है कि मनुष्य को स्त्रियों के साथ व्यवहार करते हुए अत्यन्त सतर्क रहना चाहिए। ब्रह्मचारी को तो अपनी गुरुपत्नी को भी, यदि वह युवती हो, देखना मना है। कभी-कभी गुरुपत्नी अपने पति के शिष्य से कुछ काम ले सकती है, जिस तरह कि वह अपने पुत्र से ले सकती है, किन्तु यदि गुरुपत्नी युवती हो तो ब्रह्मचारी को उसकी सेवा करना वर्जित है।

पूर्ण वर्षसहस्रं मे विषयान्सेवतोऽसकृत् ।  
तथापि चानुसवनं तृष्णा तेषूपजायते ॥ १८ ॥

#### शब्दार्थ

पूर्णम्—पूरे; वर्ष-सहस्रम्—एक हजार वर्ष; मे—मेरा; विषयान्—इन्द्रियतृप्ति; सेवतः—भोग करते हुए; असकृत्—निरन्तर; तथा अपि—फिर भी; च—निस्सन्देह; अनुसवनम्—अधिकाधिक; तृष्णा—कामेच्छाएँ; तेषु—इन्द्रियतृप्ति में; उपजायते—बढ़ती जाती है।

मैंने इन्द्रियतृप्ति के भोगने में पूरे एक हजार वर्ष बिता दिये हैं फिर भी ऐसे आनन्द को भोगने की

मेरी इच्छा नित्य बढ़ती जाती है।

तात्पर्य : महाराज ययाति अपने वास्तविक अनुभव के आधार पर बताते हैं कि वृद्धावस्था में भी विषयवासनाएँ कितनी प्रबल होती हैं।

तस्मादेतामहं त्यक्त्वा ब्रह्मण्यध्याय मानसम् ।  
निर्द्वन्द्वो निरहङ्कारश्चरिष्यामि मृगैः सह ॥ १९ ॥

#### शब्दार्थ

तस्मात्—इसलिए; एताम्—ऐसी प्रबल इच्छाओं को; अहम्—मैं; त्यक्त्वा—त्याग कर; ब्रह्मणि—परब्रह्म में; अध्याय—स्थिर करके; मानसम्—मन को; निर्द्वन्द्वः—द्वन्द्व रहित; निरहङ्कारः—मिथ्या अहंकार से रहित; चरिष्यामि—जंगल में विचरण करूँगा; मृगैः सह—जंगली पशुओं के साथ।

अतएव अब मैं इन सारी इच्छाओं को त्याग दूँगा और भगवान् का ध्यान करूँगा। मनोरथों के द्वन्द्वों से तथा मिथ्या अहंकार से रहित होकर मैं जंगल में पशुओं के साथ विचरण करूँगा।

तात्पर्य : जंगल जाकर पशुओं के साथ रहना और भगवान् का ध्यान करना ही कामवासनाओं को त्यागने का एकमात्र उपाय है। जब तक मनुष्य इन कामेच्छाओं को त्याग नहीं देता तब तक उसका मन भौतिक कल्मष से मुक्त नहीं हो सकता। अतएव यदि कोई जन्म, मरण, जरा तथा व्याधि के बन्धन से छूटना चाहता है तो उसे एक निश्चित आयु के बाद जंगल चले जाना चाहिए। *पञ्चाशोर्ध्वं वनं व्रजेत्*। पचास वर्ष के बाद मनुष्य को स्वेच्छा से पारिवारिक जीवन छोड़कर जंगल चले जाना चाहिए। सर्वश्रेष्ठ जंगल वृन्दावन है

जहाँ उसे पशुओं के साथ रहने की आवश्यकता नहीं अपितु वहाँ वह भगवान् के साथ रह सकता है क्योंकि वे वृन्दावन कभी नहीं छोड़ते। वृन्दावन में कृष्णभावनामृत का अनुशीलन करना भौतिक बंधन से मुक्त होने का सर्वोत्तम उपाय है क्योंकि वृन्दावन में मनुष्य स्वतः कृष्ण का ध्यान कर सकता है। वृन्दावन में अनेक मन्दिर हैं और इनमें से किसी न किसी में राधाकृष्ण या कृष्णबलराम के रूप में भगवान् के स्वरूप का दर्शन किया जा सकता है और इस स्वरूप का ध्यान किया जा सकता है। जैसा कि यहाँ *ब्रह्मण्यध्याय* शब्दों द्वारा व्यक्त किया गया है, मनुष्य को अपना मन परब्रह्म में केन्द्रित करना चाहिए। यह परब्रह्म कृष्ण है जिसकी पुष्टि *भगवद्गीता* में अर्जुन द्वारा की गई है ( *परं ब्रह्म परं धाम पवित्रं परमं भवान्* )। कृष्ण तथा उनका धाम वृन्दावन पृथक् नहीं हैं। श्रीचैतन्य महाप्रभु ने कहा है—*आराध्यो भगवान् ब्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनम्*। वृन्दावन कृष्ण के ही समान है। अतएव यदि किसी को वृन्दावन में रहने का सौभाग्य प्राप्त हो और यदि वह धूर्त न हो अपितु वृन्दावन में केवल रहता ही हो तथा अपना मन कृष्ण में एकाग्र करता हो तो वह भवबन्धन से छूट जाता है। किन्तु उस का मन वृन्दावन में भी शुद्ध नहीं हो पाता, यदि वह कामेच्छाओं से विचलित हो। मनुष्य को वृन्दावन में रहते हुए अपराध नहीं करना चाहिए क्योंकि वृन्दावन में अपराधी जीवन बन्दरों तथा सूअरों के जीवन के तुल्य होगा। वृन्दावन में अनेक बंदर तथा सूअर रहते हैं और उन्हें संभोग की इच्छा बनी रहती है। जो लोग वृन्दावन जा करके भी संभोग के लिए लालायित रहते हैं उन्हें तुरन्त ही वृन्दावन छोड़ देना चाहिए और भगवान् के चरणकमलों पर किये जाने वाले गम्भीर अपराधों को रोक देना चाहिए। ऐसे अनेक दिग्भ्रमित व्यक्ति हैं जो अपनी कामेच्छा की पूर्ति के लिए वृन्दावन में रहते हैं, किन्तु वे बन्दरों तथा सूअरों के ही समान हैं। जो लोग माया के अधीन हैं और विशेष रूप से कामेच्छाओं के वशीभूत हैं वे *मायामृग* कहलाते हैं। निस्सन्देह, सभी लोग भौतिक जीवन की बद्ध अवस्था में मायामृग ही होते हैं। कहा गया है—*मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्*—श्रीचैतन्य महाप्रभु ने इस संसार के मायामृगों अर्थात् उन मनुष्यों पर, जो कामेच्छाओं के कारण कष्ट पा रहे हैं, अपनी अहैतुकी कृपा दिखाने के लिए संन्यास ग्रहण किया। लोगों को श्रीचैतन्य महाप्रभु के सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए और पूर्ण कृष्णभावनामृत में कृष्ण का सदैव चिन्तन करना चाहिए। तभी वे वृन्दावन में रहने के योग्य होंगे और उनका जीवन सफल हो सकेगा।

दृष्टं श्रुतमसद्बुद्ध्वा नानुध्यायेन्न सन्दिशेत् ।  
संसृतिं चात्मनाशं च तत्र विद्वान्स आत्मदृक् ॥ २० ॥

### शब्दार्थ

दृष्टम्—हमारे द्वारा वर्तमान जीवन में अनुभूत भौतिक भोग; श्रुतम्—भौतिक भोग जो सकाम कर्मियों को भावी सुख के लिए मिलना है ( वर्तमान या अगले जीवन में या स्वर्गलोक आदि में ); असत्—जो क्षणिक तथा निकृष्ट है; बुद्ध्वा—जानकर; न—नहीं; अनुध्यायेत्—सोचना चाहिए; न—न तो; सन्दिशेत्—वास्तव में भोग करना चाहिए; संसृतिम्—भौतिक जीवन का दीर्घ होना; च—तथा; आत्म-नाशम्—अपनी स्वाभाविक स्थिति का विस्मरण; च—भी; तत्र—ऐसे विषय में; विद्वान्—पूर्णतया अवगत; सः—ऐसा व्यक्ति; आत्म-दृक्—स्वरूपसिद्ध ।

जो यह जानता है कि भौतिक सुख चाहे अच्छा हो या बुरा, इस जीवन में हो या अगले जीवन में, इस लोक में हो या स्वर्गलोक में हो, क्षणिक तथा व्यर्थ है और यह जानता है कि बुद्धिमान पुरुष को ऐसी वस्तुओं को भोगने या सोचने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। वह मनुष्य आत्मज्ञानी है। ऐसा स्वरूपसिद्ध व्यक्ति भलीभाँति जानता है कि भौतिक सुख बारम्बार जन्म एवं अपनी स्वाभाविक स्थिति के विस्मरण का एकमात्र कारण है।

तात्पर्य : जीव आत्मा है और भौतिक शरीर उसका बन्धन है। यही आध्यात्मिक ज्ञान का शुभारम्भ है।

देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा।

तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ॥

“जिस तरह इस शरीर में देहधारी आत्मा निरन्तर बालपन से युवावस्था और फिर वृद्धावस्था को प्राप्त होता है उसी प्रकार मृत्यु के समय आत्मा दूसरे शरीर में चला जाता है। जो स्वरूपसिद्ध व्यक्ति है वह ऐसे परिवर्तन से मोहग्रस्त नहीं होता।” ( भगवद्गीता २.१३ ) मानव जीवन का असली उद्देश्य भौतिक शरीर के बन्धन से मुक्त होना है। इसीलिए कृष्ण बद्ध आत्मा को आत्म-साक्षात्कार सिखाने तथा भवबन्धन से मुक्त होने की विधि बताने के लिए अवतरित होते हैं। यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। धर्मस्य ग्लानिः का अर्थ है “जीवन का प्रदूषण।” हमारा जीवन अब प्रदूषित है। इसे शुद्ध किया जाना चाहिए ( सत्त्वं शुद्ध्येत )। मानव जीवन इसी शुद्धि के लिए है न कि बाह्य शरीर के रूप में सुख का चिन्तन करने के लिए जो भवबन्धन का कारण है। अतएव इस श्लोक में महाराज ययाति उपदेश दे रहे हैं कि हमें जितना भी भौतिक सुख दिखता है तथा जितने की हमें आशा बँधाई जाती है वह सब केवल क्षणिक एवं नश्वर है। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। यदि कोई ब्रह्मलोक भी चला जाय, किन्तु यदि वह भवबन्धन से

मुक्त नहीं है तो वह इस पृथ्वी लोक पर लौट आता है और संसार में दुखमय स्थिति में रहता जाता है ( भूत्वा भूत्वा प्रलीयते ) । मनुष्य को चाहिए कि वह इस जानकारी को सदा मन में रखे ताकि वह इस जीवन में या अगले जीवन में किसी प्रकार के इन्द्रियभोग के प्रति आकृष्ट न हो। जो इस सत्य से पूर्णतया अवगत रहता है वह स्वरूपसिद्ध है ( स आत्मदृक् ), किन्तु उसके अतिरिक्त अन्य सारे लोग जन्म-मृत्यु के चक्र में फँसे रहते हैं ( मृत्युसंसारवर्त्मनि ) । ऐसा ज्ञान असली बुद्धि का है और इसके विरुद्ध जो कुछ भी है वह दुख का कारण है। कृष्ण भक्त—निष्काम, अतएव 'शान्त'। केवल कृष्ण भक्त ही शान्त है क्योंकि वह जीवन के लक्ष्य को जानता है। अन्य सारे लोग, चाहे कर्मी हों या ज्ञानी अथवा योगी, अशान्त रहते हैं और असली शान्ति नहीं भोग पाते।

इत्युक्त्वा नाहुषो जायां तदीयं पूरवे वयः ।

दत्त्वा स्वजरसं तस्मादाददे विगतस्पृहः ॥ २१ ॥

#### शब्दार्थ

इति उक्त्वा—ऐसा कहकर; नाहुषः—नहुष पुत्र महाराज ययाति; जायाम्—अपनी पत्नी देवयानी से; तदीयम्—उसका; पूरवे—अपने पुत्र पूरु को; वयः—जवानी; दत्त्वा—देकर; स्व-जरसम्—अपने बुढ़ापे को; तस्मात्—उससे; आददे—वापस ले लिया; विगत-स्पृहः—सारी वासनाओं से मुक्त होकर, निस्पृह।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : अपनी पत्नी देवयानी से इस प्रकार कहकर समस्त इच्छाओं से मुक्त हुए राजा ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु को बुलाया और उसे उसकी जवानी लौटाकर अपना बुढ़ापा वापस ले लिया।

दिशि दक्षिणपूर्वस्यां द्रुह्यं दक्षिणतो यदुम् ।

प्रतीच्यां तुर्वसुं चक्र उदीच्यामनुमीश्वरम् ॥ २२ ॥

#### शब्दार्थ

दिशि—दिशा में; दक्षिण-पूर्वस्याम्—दक्षिण पूर्व; द्रुह्यम्—अपने बेटे द्रुह्यु को; दक्षिणतः—संसार की दक्षिण दिशा में; यदुम्—यदु को; प्रतीच्याम्—पश्चिम दिशा में; तुर्वसुम्—अपने पुत्र तुर्वसु को; चक्रे—बना दिया; उदीच्याम्—उत्तर दिशा में; अनुम्—अपने पुत्र अनु को; ईश्वरम्—राजा।

राजा ययाति ने अपने पुत्र द्रुह्यु को दक्षिण पूर्व की दिशा, अपने पुत्र यदु को दक्षिण की दिशा, अपने पुत्र तुर्वसु को पश्चिमी दिशा और अपने चौथे पुत्र अनु को उत्तरी दिशा दे दी। इस तरह उन्होंने राज्य का बँटवारा कर दिया।



भूमण्डलस्य सर्वस्य पूरुमर्हत्तमं विशाम् ।  
अभिषिच्याग्रजास्तस्य वशे स्थाप्य वनं ययौ ॥ २३ ॥

**शब्दार्थ**

भू-मण्डलस्य—सारे पृथ्वीलोक का; सर्वस्य—सारी सम्पत्ति का; पूरुम्—अपने सब से छोटे पुत्र पूरु को; अर्हत्-तमम्—सर्वाधिक पूज्य व्यक्ति, राजा; विशाम्—प्रजा का; अभिषिच्य—अभिषेक करके; अग्रजान्—यदु से लेकर अपने बड़े भाइयों को; तस्य—पूरु के; वशे—नियंत्रण में; स्थाप्य—रखकर; वनम्—वन; ययौ—चला गया ।

ययाति ने अपने सबसे छोटे पुत्र पूरु को सारे विश्व का सम्राट तथा सारी सम्पत्ति का स्वामी बना दिया और पूरु से बड़े अपने अन्य सारे पुत्रों को पूरु के अधीन कर दिया ।

आसेवितं वर्षपूगान्ध्ववर्गं विषयेषु सः ।  
क्षणेन मुमुचे नीडं जातपक्ष इव द्विजः ॥ २४ ॥

**शब्दार्थ**

आसेवितम्—सदैव संलग्न रहकर; वर्ष-पूगान्—अनेकानेक वर्षों तक; षट्-वर्गम्—मन समेत छहों इन्द्रियों को; विषयेषु—इन्द्रियभोग में; सः—राजा ययाति ने; क्षणेन—एक ही क्षण के भीतर; मुमुचे—छोड़ दिया; नीडम्—नीड़, घोंसला; जात-पक्षः—पंख उग आये हैं; इव—सदृश; द्विजः—पक्षी ।

हे राजा परीक्षित, ययाति ने अनेकानेक वर्षों तक विषयवासनाओं का भोग किया, क्योंकि वे इसके आदी थे, किन्तु उन्होंने एक क्षण के भीतर अपना सर्वस्व त्याग दिया जिस तरह पंख उगते ही पक्षी अपने घोंसले से उड़ जाता है ।

**तात्पर्य :** महाराज ययाति बद्धजीवन के बन्धन से तुरन्त मुक्त हो गये, यह सचमुच आश्चर्यजनक है । लेकिन यहाँ पर जो दृष्टान्त दिया गया है वह उपयुक्त है । पक्षी का एक छोटा-सा बच्चा, जो खाने पीने के लिए भी अपने माता-पिता पर निर्भर रहता है, पंख उगते ही सहसा घोंसले से उड़ जाता है । इसी प्रकार यदि कोई पूर्णतया भगवान् के शरणागत हो जाता है तो वह तुरन्त बद्ध-जीवन के बन्धन से मुक्त हो जाता है जैसा कि स्वयं भगवान् ने वचन दिया है ( अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि ) । श्रीमद्भागवत में ( २.४.१८ ) कहा गया है—

*किरातहूणान्ध्रपुलिन्दपुल्कशा*

*आभीरशुम्भा यवनाः खसादयः ।*

*येऽन्ये च पापा यदपाश्रयाश्रयाः*

शुद्ध्यन्ति तस्मै प्रभविष्णवे नमः ॥

“किरात, हूण, आन्ध्र, पुलिन्द, पुलकश, आभीर, शुम्भ, यवन तथा खस जातियाँ तथा पापकर्मों में लिप्त रहने वाले अन्य लोग भी भगवान् के भक्तों की शरण ग्रहण करने पर शुद्ध हो जाते हैं क्योंकि भगवान् सर्वोच्च शक्ति हैं। मैं उन्हें सादर नमस्कार करता हूँ।” भगवान् विष्णु इतने शक्तिशाली हैं कि यदि वे चाहें तो किसी का भी तुरन्त उद्धार कर सकते हैं और भगवान् विष्णु या कृष्ण को तो तुरन्त प्रसन्न किया जा सकता है यदि हम ययाति की भाँति भगवान् के आदेश को मानकर उनकी शरण ग्रहण कर लें। महाराज ययाति वासुदेव कृष्ण की सेवा करना चाहते थे अतएव ज्यों ही उन्होंने गृहस्थ जीवन से विरक्त होना चाहा त्योंही भगवान् वासुदेव ने उनकी सहायता की। अतएव भगवान् के चरणकमलों में अपने आपको समर्पित करते समय हमें अत्यन्त निष्ठावान होना चाहिए। तब हम बद्धजीवन के सारे बन्धन से तुरन्त छूट सकेंगे। अगले श्लोक में इसकी स्पष्ट व्याख्या की गई है।

स तत्र निर्मुक्तसमस्तसङ्ग

आत्मानुभूत्या विधुतत्रिलिङ्गः ।

परेऽमले ब्रह्मणि वासुदेवे

लेभे गतिं भागवतीं प्रतीतः ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

सः—महाराज ययाति; तत्र—ऐसा करके; निर्मुक्त—तुरन्त मुक्त हो गया; समस्त-सङ्गः—सारा कल्मष; आत्म-अनुभूत्या—अपनी स्वाभाविक स्थिति को समझने मात्र से; विधुत—स्वच्छ; त्रि-लिङ्गः—प्रकृति के तीन गुणों ( सतोगुण, रजोगुण तथा तमोगुण ) से उत्पन्न कल्मष; परे—ब्रह्म में; अमले—मलरहित; ब्रह्मणि—परमेश्वर में; वासुदेवे—भगवान् वासुदेव परम सत्य में; लेभे—प्राप्त किया; गतिम्—लक्ष्य; भागवतीम्—भगवान् के पार्षद रूप में; प्रतीतः—सुप्रसिद्ध।

चूँकि राजा ययाति ने भगवान् वासुदेव के चरणकमलों में पूरी तरह अपने को समर्पित कर दिया था अतएव वे प्रकृति के गुणों के सारे कल्मष से मुक्त हो गये। अपने आत्मसाक्षात्कार के कारण वे अपने मन को परब्रह्म वासुदेव में स्थिर कर सके और इस तरह अन्ततः उन्हें भगवान् के पार्षद का पद प्राप्त हुआ।

तात्पर्य : विधुत् का अर्थ है 'स्वच्छ' और यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस जगत में प्रत्येक प्राणी कल्मषग्रस्त है ( कारणं गुणसंगोऽस्य )। क्योंकि हम भौतिक अवस्था में हैं, इस जगत में हम सतोगुण या रजोगुण या तमोगुण से कलुषित होते हैं। यदि कोई सतोगुण के कारण योग्य ब्राह्मण बन भी जाय तो भी वह

भौतिक दृष्टि से कल्मषग्रस्त ही रहता है। उसे सतोगुण पार करके शुद्ध सत्त्व पद प्राप्त करना होता है। तभी वह विधुत-त्रिलिंग होता है अर्थात् तीनों गुणों से उत्पन्न कल्मष से स्वच्छ बनता है। यह कृष्ण की कृपा से ही सम्भव है। जैसा कि श्रीमद्भागवत में (१.२.१७) कहा गया है—

शृण्वतां स्वकथाः कृष्णः पुण्यश्रवणकीर्तनः ।

हृद्यन्तःस्थो ह्यभद्राणि विधुनोति सुहृत्सताम् ॥

“भगवान् श्रीकृष्ण जो कि हर एक के हृदय में परमात्मास्वरूप स्थित हैं और सच्चे भक्त का उपकार करने वाले हैं, उस भक्त के हृदय की भौतिक भोग की इच्छा को मिटा देते हैं जो उनके उन सन्देशों को सुनने के लिए उत्सुक है जो ठीक से सुनने और उच्चरित होने पर स्वयं वैभवशाली होते हैं।” जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत या भगवद्गीता से कृष्ण के शब्दों को सुनकर पूर्णतया कृष्णभक्त बनने का प्रयास करता है उसके हृदय से निश्चित रूप से सारा मल दूर हो जाता है। चैतन्य महाप्रभु भी कहते हैं— चेतोदर्पणमार्जनम्— भगवान् की महिमा का श्रवण तथा कीर्तन करने से हृदय में जमा सारा मल धुल जाता है। ज्योंही मनुष्य भौतिक कल्मष के मल से मुक्त हो जाता है, जैसा कि महाराज ययाति हुए, तो उसे भगवान् के पार्षद का मूलपद प्राप्त हो जाता है। यह स्वरूपसिद्धि कहलाती है।

श्रुत्वा गाथां देवयानी मेने प्रस्तोभमात्मनः ।

स्त्रीपुंसोः स्नेहवैक्लव्यात्परिहासमिवेरितम् ॥ २६ ॥

शब्दार्थ

श्रुत्वा—सुनकर; गाथाम्—कथा; देवयानी—महाराज ययाति की पत्नी देवयानी; मेने—समझ गई; प्रस्तोभम् आत्मनः—अपने आत्म-साक्षात्कार के लिए उपदेश दिये जाने पर; स्त्री-पुंसोः—पति तथा पत्नी के बीच; स्नेह-वैक्लव्यात्—प्रेम तथा स्नेह के विनिमय से; परिहासम्—मजाक या कहानी; इव—सदृश; ईरितम्—कही गई (ययाति द्वारा)।

जब देवयानी ने महाराज ययाति द्वारा कही गई बकरे-बकरी की कथा सुनी तो वह समझ गयी कि हास-परिहास के रूप में पति-पत्नी के मध्य मनोरंजनार्थ कही गई यह कथा उसमें उसकी स्वाभाविक स्थिति को जागृत करने के निमित्त थी।

तात्पर्य : जब मनुष्य भौतिक जीवन के प्रति वास्तव में सजग होता है तो उसे कृष्ण के नित्य दास के रूप में अपनी असली स्थिति का ज्ञान होता है। यह मुक्ति कहलाती है। मुक्तिर्हित्वान्यथा रूपं स्वरूपेण व्यवस्थितिः ( भागवत २.१०.६ )। माया के वशीभूत इस जगत में हर जीव अपने को हर वस्तु का स्वामी

मानता है ( अहंकारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ) । मनुष्य सोचता है कि न ईश्वर है, न कोई नियंत्रक और वह कुछ भी करने के लिए स्वतंत्र है । यह भौतिक दशा है और जब मनुष्य इस अज्ञान से जागता है तो वह मुक्त कहलाता है । महाराज ययाति ने देवयानी को कुँएँ से निकाला था और अन्त में कर्तव्यनिष्ठ पति की तरह बकरे-बकरी की कथा सुनाकर उसे उपदेश देकर भौतिक सुख की भ्रान्त धारणा से मुक्त किया । देवयानी अपने मुक्त पति को समझ सकने में पूर्णतया सक्षम थी अतएव उसने आज्ञाकारिणी पत्नी के रूप में उसका अनुगमन करने का निश्चय किया ।

सा सन्निवासं सुहृदां प्रपायामिव गच्छताम् ।

विज्ञायेश्वरतन्त्राणां मायाविरचितं प्रभोः ॥ २७ ॥

सर्वत्र सङ्गमुत्सृज्य स्वप्नौपम्येन भार्गवी ।

कृष्णे मनः समावेश्य व्यधुनोल्लिङ्गमात्मनः ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

सा—देवयानी; सन्निवासम्—साथ में रहते हुए; सुहृदाम्—मित्रों तथा सम्बन्धियों के; प्रपायाम्—प्याऊँ में; इव—सदृश; गच्छताम्—एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करने वालों का; विज्ञाय—जानकर; ईश्वर-तन्त्राणाम्—प्रकृति के कठोर नियमों के अन्तर्गत; माया-विरचितम्—माया द्वारा लागू नियमों को; प्रभोः—भगवान् के; सर्वत्र—इस जगत में सब जगह; सङ्गम्—साथ; उत्सृज्य—छोड़कर; स्वप्न-औपम्येन—स्वप्न के सदृश; भार्गवी—शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी; कृष्णे—कृष्ण में; मनः—पूर्ण ध्यान; समावेश्य—स्थिर करके; व्यधुनोत्—त्याग दिया; लिङ्गम्—स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों को; आत्मनः—आत्मा के ।

तत्पश्चात् शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी समझ गई कि पति, मित्रों तथा सम्बन्धियों का सांसारिक साथ प्याऊँ में यात्रियों की संगति के समान है । भगवान् की माया से समाज के सम्बन्ध, मित्रता तथा प्रेम ठीक स्वप्न की ही भाँति उत्पन्न होते हैं । कृष्ण के अनुग्रह से देवयानी ने भौतिक जगत की अपनी काल्पनिक स्थिति छोड़ दी । उसने अपने मन को पूरी तरह कृष्ण में स्थिर कर दिया और स्थूल तथा सूक्ष्म शरीरों से मोक्ष प्राप्त कर लिया ।

तात्पर्य : मनुष्य को आश्वस्त होना चाहिए कि वह परब्रह्म कृष्ण का अंश दिव्य आत्मा है, किन्तु न जाने किस तरह वह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार से रचित स्थूल तथा सूक्ष्म शरीर के भौतिक आवरण में बन्दी हो गया है । मनुष्य को जान लेना चाहिए कि समाज का साथ, मित्रता, प्रेम, राष्ट्रीयता, धर्म इत्यादि माया की सृष्टियाँ हैं । मनुष्य का एकमात्र व्यापार कृष्णभक्त बनना और यथासम्भव कृष्ण की अधिकाधिक सेवा करना है । इस तरह मनुष्य भवबन्धन से छूटता है । कृष्ण के अनुग्रह

से देवयानी को यह स्थिति अपने पति के उपदेशों से प्राप्त हुई।

नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय वेधसे ।

सर्वभूताधिवासाय शान्ताय बृहते नमः ॥ २९ ॥

#### शब्दार्थ

नमः—नमस्कार करती हूँ; तुभ्यम्—तुमको; भगवते—भगवान्; वासुदेवाय—वासुदेव को; वेधसे—स्रष्टा; सर्व-भूत-अधिवासाय—सर्वव्यापी ( प्रत्येक जीव के हृदय में तथा प्रत्येक अणु में भी ); शान्ताय—शान्त, मानो पूर्णतया निष्क्रिय हो; बृहते—सबों में विशालतम; नमः—नमस्कार करती हूँ।

हे भगवान् वासुदेव, हे पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर, आप समस्त विराट जगत के स्रष्टा हैं। आप सबों के हृदय में परमात्मा रूप में निवास करते हैं और सूक्ष्मतर से सूक्ष्मतर होते हुए भी बृहत्तम से बृहत्तर हैं तथा सर्वव्यापक हैं। आप परम शान्त लगते हैं मानो आपको कुछ करना-धरना न हो लेकिन ऐसा आपके सर्वव्यापक स्वभाव एवं सर्व ऐश्वर्य से पूर्ण होने के कारण है। अतएव मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ।

तात्पर्य : यहाँ पर इस बात का वर्णन किया गया है कि अपने महान् पति के अनुग्रह से देवयानी किस तरह स्वरूपसिद्ध बन सकी। ऐसे साक्षात्कार का वर्णन करना भक्ति सम्पन्न करने की दूसरी विधि है।

*श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।*

*अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ।*

“भगवान् विष्णु के पवित्र नाम, रूप, गुण, साज-सामान तथा लीलाओं को सुनना और उनका कीर्तन करना, उनका स्मरण करना, भगवान् के चरणकमलों की सेवा करना, भगवान् की पूजा करना, प्रार्थना करना, उनका दास बनना, उन्हें अपना सर्वश्रेष्ठ मित्र मानना तथा उन्हें सर्वस्व अर्पित करना—शुद्ध भक्ति की ये नौ विधियाँ हैं। ( भागवत ७.५.२३ )। इनमें से श्रवणं कीर्तनं विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। अपने पति से भगवान् वासुदेव की महानता के विषय में श्रवण करके देवयानी निश्चित रूप से आश्वस्त हो गई और उसने भगवान् के चरणकमलों में अपने को समर्पित कर दिया ( ॐ नमो भगवते वासुदेवाय )। यही ज्ञान है बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते। भगवान् वासुदेव की शरणागति जन्मजन्मांतरों तक उनके विषय में श्रवण करने का परिणाम होती है। ज्योंही मनुष्य भगवान् वासुदेव की शरण में चला जाता है त्योंही वह मुक्त हो जाता है। देवयानी अपने महान् पति महाराज ययाति की संगति से शुद्ध हो गई, उसने भक्तियोग ग्रहण किया

और इस तरह वह मोक्ष को प्राप्त हुई।

इस तरह *श्रीमद्भागवत* के नवम स्कन्ध के अन्तर्गत “राजा ययाति को मुक्ति-लाभ” नामक उन्नीसवें अध्याय के भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुए।